भगवान् का हुए बिना
भक्ति असंभव

श्रीश्रीमद् भक्ति बल्लभ तीर्थ
गोस्वामी महाराज जी

SGD

श्रीलगुरुदेव

गुरुजी (श्रीभक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज) जब पहली बार पंजाब के जालंधर शहर गए थे, तब वहाँ के कई मंदिरों में हरिकथा का आयोजन किया गया था। श्रीसीतारामजी के एक मंदिर में भी चार दिन की सभा का आयोजन किया गया। उस के मंदिर में श्रीसीतारामजी, हनुमानजी और शिवजी पूजित होते थे। अनेकों व्यक्ति हरिकथा श्रवण करने के लिए वहाँ आते थे। दो दिन गुरुजी ने, 'भगवान् के भजन की आवश्यकता विषय पर दिव्य उपदेश प्रदान किए।

दो दिन की हरिकथा श्रवण करने

के बाद तीसरे दिन एक बूढ़ी माताजी, गुरुजी के पास आई और उनसे एक प्रश्न करने लगीं, "स्वामी जी, मैं पचास साल से इस मंदिर में आ रही हूँ। यहाँ आकर प्रतिदिन, सीतारामजी के दर्शन करती हूँ, प्रणाम करती हूँ, आरती दर्शन करती हूँ, यहाँ आनेवाले सभी संत-महात्माओं से कथा श्रवण करती हूँ। इस प्रकार करते-करते मुझे पचास साल बीत गए किन्तु सीतारामजी के प्रति मेरा थोड़ा सा भी प्रेम नहीं हुआ। प्रत्येक दिन यहाँ आने के बाद भी मेरी आसक्ति मेरे पोता-पोती में ही बढ़ती रही। इसका कारण क्या है? यदि भगवान् में प्रेम

उदित नहीं हुआ तो प्रत्येक दिन यहाँ आने का लाभ क्या हुआ ?''

क्योंकि माताजी ने यह प्रश्न पंजाबी भाषा में पूछा था, गुरुजी ने श्रीनारायण ब्रह्मचारी (श्रील भक्ति प्रसाद पूरी महाराज), जोकि पहले लुधियाना में रहते थे, उनसे पूछा, "माताजी क्या कह रही हैं ? "

श्रीनारायण ब्रह्मचारी ने माताजी का प्रश्न गुरुजी को हिंदी में सुनाया। गुरुजी माताजी के इस प्रश्न को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। गुरुजी ने मंदिर में कथा श्रवण करने आनेवाले सभी श्रोताओं से कहा, "आप सभी यहाँ मंदिर में आते हैं। सभी के

लिए इस प्रश्न का उत्तर सुनना आवश्यक है। इस प्रश्न का उत्तर मैं कल की कथा में दूँगा।"

सभा–दूसरे दिन सभी श्रोता माताजी के प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए उत्सुक थे। गुरुजी में आए और माताजी के प्रश्न का उत्तर देने से पहले उन्होंने माताजी से पूछा, "माताजी, आपने यहाँ अनेक महात्माओं से हरिकथा श्रवण की है। क्या आपने कभी किसी महात्मा से यह प्रश्न किया कि रामजी के साथ आपका क्या सम्बन्ध है? सर्वप्रथम से हमें यह जानना होगा कि भगवान् के साथ हमारा क्या

सम्बन्ध है। हम पुत्र, पति, मातापिता आदि को अपना समझते हैं और यह मानते हैं कि हम उनके हैं। "मैं किसी का पुत्र हूँ, किसी का पिता हूँ, किसी की पत्नी हूँ," इस प्रकार के किसी भी सांसारिक अभिमान को लेकर मंदिर में भगवान के दर्शन, हरिकथा श्रवण-कीर्तन आदि करने से भगवान् में प्रीति नहीं होगी, सांसारिक आसक्ति ही बढ़ेगी। इस प्रकार का अभिमान रहने से हमारे सभी कार्य उनकी ही सुख-सुविधा के लिए होंगे और हम जिनके लिए कार्य करेंगे, हमारी आसक्ति भी स्वाभाविक रूप से उन्हीं में होगी। इसलिए हमें, "मैं भगवान्

का हूँ, मेरे सभी सम्बन्ध भगवान् के साथ हैं," इस अभिमान को जागृत करना होगा।

जब हम इस जगत् के सभी प्रकार के अभिमानों से पूर्ण रूप से मुक्त होकर अपनी सभी इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में नियोजित करेंगे, तब हम जो भी क्रिया करेंगे वह क्रिया भक्ति कहलाएगी। इस जगत् के किसी भी प्रकार के अहंकार के साथ किया हुआ कोई भी कार्य भक्ति नहीं है।" गुरुजी ने इस बात को समझाने के लिए एक उदाहरण दिया: -

कोलकाता का एक व्यक्ति दिल्ली में एक धनी महाजन की दुकान पर काम

करता था। उसकी पत्नी और बच्चे कोलकाता में रहते थे। कोलकाता में उसका अपना घर था। दुकान में काम करने से उसे जो भी धनराशि मिलती थी, वह उसे कोलकाता में अपने परिवार के पास भेज देता था। वह केवल मात्र दुकान का काम ही नहीं, महाजन को प्रसन्न करने के लिए उसके घर का भी काम करता था। इस प्रकार उसने पचास साल तक उस महाजन के पास काम किया। इन पचास सालों में कुल मिलाकर वह दो साल से भी कम समय तक अपने परिवार के साथ रहा होगा—कभी पंद्रह दिन, कभी बीस दिन,

कभी एक मास। और किसी-किसी वर्ष तो अधिक व्यस्तता के कारण वह पूरे वर्ष में एक बार भी घर नहीं गया था।

पचास साल के बाद जब वह अपने काम से निवृत्त होकर महाजन को छोड़कर कोलकाता वापस आ रहा था, तब उसकी आँखो से आँसू की एक बूंद भी नहीं गिरी। पचास साल में से लगभग 47 साल तक उस महाजन के साथ रहा, उसका ही काम करता रहा, तब भी उसकी आसक्ति अपने परिवार में ही रही। उसने महाजन का काम इस भाव से किया कि वह कोलकाता का है, अपनी पत्नी का है, बेटे का है। महाजन

के साथ, 'मैं अपने मालिक महाजन का हूँ' यह समझकर कभी नहीं रहा। अपना सम्बन्ध परिवार के साथ समझने के कारण स्थूल रूप से महाजन के पास रहने पर भी उसकी आसक्ति महाजन में नहीं हुई।

इसी प्रकार हम भी, जड़ जगत् के झूठे अभिमान को लेकर जितनी भी सेवा करेंगे वह सब हमारे उस झूठे अभिमान को ही बढ़ाएगी। भजन करने पर भी हम संसार में ही आसक्त होकर रह जाएँगे। केवल अभिमान छोड़ने से ही सब हो जाएगा ऐसा भी नहीं है। भगवान् का होकर भगवान् की सेवा करनी होगी। 'मैं भगवान् का हूँ,

भगवान् मेरे प्यारे हैं, भगवान् से मेरा सम्बन्ध है', इस भाव से भगवान् की सेवा करनी होगी। सम्बन्ध जानकर सेवा करने से जिनकी सेवा करते हैं उनके प्रति आसक्ति होगी।

हैदराबाद के एक पति-पत्नी अपनी बेटी की बात सुनाते थे। जिस दिन उनकी बेटी का विवाह हुआ उस दिन वह यह कहते हुए बहुत रो रही थी, "मैं माता-पिता और अपने घर को छोड़कर नहीं जाऊँगी।"

माता-पिता समझा रहे थे, "चिंता की बात नहीं है। वहाँ जाकर, बाद में, कुछ दिन के लिए यहाँ आ जाना।"

किन्तु लड़की यह कहते हुए रोती रही, “नहीं नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।”

विवाह के बाद कुछ दिन ससुराल में रहकर वह वापस आई। उसके बाद कुछ दिन ससुराल जाती, कुछ दिन मायके में रहती। धीरे-धीरे वह पति के साथ अपने सम्बन्ध को समझने लगी। उसे ‘मैं पति की हूँ, पति का घर मेरा है’, इस बात का अनुभव होने लगा। उसके बाद उसे एक बच्चा हुआ। अब वह अपने परिवार में व्यस्त हो गई।

कुछ दिनों के बाद माताजी ने उसे एक पत्र लिखा, “तुम्हारी बहन का विवाह

है, तुम्हें कुछ दिन यहाँ आकर रहना होगा और यहाँ का काम देखना होगा।"

लड़की ने उत्तर में लिखा, "माताजी, मुझे तो आने की बहुत इच्छा है किन्तु मैं यहाँ बहुत व्यस्त हूँ। इतने दिनों के लिए वहाँ आना कठिन है।"

जो लड़की अपने माता-पिता के घर को छोड़कर जाने के लिए तैयार नहीं थी अब वह माताजी के द्वारा बुलाने पर भी उस घर में जाने के लिए तैयार नहीं थी। अब उसकी प्रीति अपने पति और बच्चे से हो गई थी। अपने पिता से अलग-अलग वस्तुएँ माँगकर अपने घर ले जाती थी। अब उसने

समझ लिया था कि पति का घर ही उसका घर है, माता-पिता का घर नहीं।

सद्-गुरु और भक्तों की कृपा व संग से जब हमारा सम्बन्ध-ज्ञान उदित होगा, तब हम जान पाएँगे कि यह जगत् हमारा घर नहीं है। हम जड़-जगत् के नहीं हैं। हमारा सम्बन्ध कृष्ण से है। हम कृष्ण के हैं। कृष्ण ही हमारे रक्षक और पालक हैं। जब तक हमें, 'मैं इस जगत् का हूँ; मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हूँ; मैं भारतवासी या लंदनवासी हूँ', इस प्रकार का कोई भी जागतिक अभिमान रहेगा तब तक कृष्ण भजन नहीं होगा। 'मैं भगवान् का हूँ, इस

जगत् का नहीं हूँ, मैं इस अमंगल का नहीं हूँ, मैं मंगलमय भगवान् का हूँ', इस अभिमान में स्थित होकर हम जो करेंगे वह भक्ति है। इससे पहले जो भी करेंगे वह भक्ति नहीं है। इस जगत् के किसी अभिमान को लेकर की गई कृष्ण सेवा भी इस जगत् की कोई स्वार्थ पूर्ति के लिए ही होगी। इससे भगवान् में प्रेम नहीं होगा।